

समयसार, संवर अधिकार। संवर अर्थात् धर्म की उत्पत्ति, धर्म की उत्पत्ति। निर्जरा अर्थात् धर्म की वृद्धि। यह अधिकार है। यहाँ तो अब दृष्टान्त देंगे, परन्तु उसके पहले यह आत्मा है, उससे पुण्य और पाप के भाव जो अन्दर (होते) हैं, शुभ-अशुभभाव है; दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम-क्रोध, हिंसा, व्यापार-धन्धे के परिणाम, उन शुभ-अशुभ परिणामों को वस्तु ही दूसरी गिनी है। आत्मा से वह वस्तु दूसरी है। आहाहा!

आत्मा तो सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्दघन है और यह विकार—शुभ-अशुभभाव दोनों दुःखरूप और परवस्तु है; दोनों एक वस्तु नहीं है। एक वस्तु नहीं है; इसलिए उनके उनके प्रदेश एक नहीं हैं। आहाहा! उनके रहने का क्षेत्र एक नहीं है। वस्तुएँ भिन्न, इसलिए उनका क्षेत्र भी भिन्न। दो (बातें हुई)। तीसरा, उनकी सत्ता भिन्न है, इसलिए पुण्य-पाप के भाव और आत्मा आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द प्रभु-दोनों की सत्ता भिन्न है, दोनों का अस्तित्व भिन्न है और इसलिए दोनों में आधार-आधेयपना नहीं है। कि भाई!

शुभ-अशुभभाव आधार और उनके कारण आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! और शुभ-अशुभभाव तथा आत्मा, दोनों को परस्पर अत्यन्त विपरीतता है। यह आ गया है। परस्पर विपरीत है। आहाहा! आत्मस्वभाव और पुण्य-पाप के भाव, दो के बीच अत्यन्त स्वरूप विपरीतता है। इतना कहकर अन्त में ऐसा कहा कि इस प्रकार ज्ञान के और अज्ञान के आधार-आधेयपना नहीं है। है अन्तिम लाईन? अर्थात् क्या कहा?

इस प्रकार से है, इसलिए ज्ञान अर्थात् आत्मा—प्रज्ञाचक्षु, जो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उसे और अज्ञान अर्थात् पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव, वह अज्ञान है, उनमें ज्ञान नहीं है, इसलिए ये दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। ज्ञान को और अज्ञान को आधार-आधेयपना नहीं है। अर्थात् रागादि दया, दान, व्रत, परिणाम आधार और उनके कारण आत्मा ज्ञात हो और सम्यग्ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा कहते हैं कि राग है, वह आत्मस्वरूप चिदानन्द से वह वस्तु ही भिन्न है। प्रदेश भिन्न है, सत्ता भिन्न है, आधार-आधेय भिन्न है और दोनों के बीच अत्यन्त स्वरूप विपरीतता है। इसलिए ज्ञान और अज्ञान... ज्ञान अर्थात् आत्मा। अन्तिम शब्द है न? आत्मा को और अज्ञान को। यह पुण्य और पाप के भाव, वे अज्ञान हैं, उन्हें ज्ञान नहीं है, उनमें ज्ञान नहीं है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा और अज्ञानस्वरूप ये पुण्य-पाप के भाव, अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं। इस अज्ञान के आधार से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह बात तो पहले सिद्ध कर गये हैं।

अब, इसका दृष्टान्त देकर समझाते हैं। इसी को विशेष समझाते हैं—जब एक ही आकाश को अपनी बुद्धि में स्थापित करके.. आकाश सर्व व्यापक है न, आकाश! यह दिखता है, वह आकाश नहीं, हों! आकाश अरूपी है। इस लोक में चौदह ब्रह्माण्ड में है और खाली भाग, खाली.. खाली.. खाली.. अलोकाकाश, कहीं अन्त नहीं, अन्त नहीं। अन्त होवे तो अन्त के बाद क्या? इस चौदह ब्रह्माण्ड के चारों ओर आकाश है, वह अनन्त है। वह आकाश सर्व व्यापक है। इस लोक में भी है और अलोक में भी है। जिसका अन्त कहीं नहीं। उससे क्षेत्र में बड़ी कोई चीज़ नहीं है। आकाश के क्षेत्र से बड़ी (दूसरी) कोई चीज़ नहीं है।

जब एक ही आकाश को अपनी बुद्धि में स्थापित करके.. ज्ञान में उस बात

को लेकर आधाराधेयभाव का विचार किया जाता है.. कि इस आकाश का आधार कौन है ? और आकाश में रहता है, वह क्या ? यह आधेय क्या है ? रहनेवाला क्या है ? और आधार देनेवाला क्या है ? आहाहा ! यदि बुद्धि में आकाश के लिए विचार करे, तब आकाश को शेष अन्य द्रव्यों में आरोपित करने का निरोध ही होने से.. आकाश, आकाश के ही आधार से है। आकाश से बड़ा कोई क्षेत्र नहीं कि जिससे उसके आधार से आकाश हो। आहाहा ! इसमें कहेंगे। आकाश क्षेत्र से बड़ा है, भगवान ज्ञान और आनन्द से बड़ा है। आहाहा !

मुमुक्षु : दो बड़ों में से बड़ा कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा आत्मा। इस आकाश को भी जाननेवाला आत्मा है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! तात्त्विक विषय बहुत सूक्ष्म है।

आत्मा को, यह पाँच बोल में कहा, उसका यह तो अब दृष्टान्त देते हैं। **(आकाश के) आधाराधेयभाव का विचार किया जाता है.. ज्ञान में-बुद्धि में आकाश का विचार करो कि यह सर्व व्यापक आकाश है, वह अरूपी है, वह अरूपी है, हों ! उसे आधार कौन ? उससे बड़ा कौन है कि जो आधार हो ? आहाहा ! यह आकाश है, वही आधार और आधेय है। आधार वह और आधेय भी वह। आहाहा ! आकाश। तब आकाश को शेष अन्य द्रव्यों में आरोपित करने का निरोध ही होने से (अर्थात् अन्य द्रव्यों में स्थापित करना अशक्य ही होने से) बुद्धि में भिन्न आधार की अपेक्षा प्रभावित नहीं होती;.. ज्ञान में विचार करे तो आकाश को लक्ष्य में ले और उस आकाश को आधार कौन ? ऐसा विचार करे तो बुद्धि में आधार-आधेय ऐसी भिन्नता उसमें भासित नहीं होती। आकाश आधार और आकाश आधेय। बाकी दूसरा आधार और आकाश आधेय, ऐसा नहीं है। आहाहा !**

और उसके प्रभावित नहीं होने से,.. क्या कहते हैं ? बुद्धि में आकाश का विचार करने पर... आहाहा ! एक तो आचार्य कहते हैं कि हम तुझे आत्मा की बात करेंगे परन्तु एक आकाश का तो तेरी बुद्धि में विचार कर। नास्तिक होवे तो भी उसे जरा विचार करना पड़ेगा कि आकाश खाली.. खाली.. अरूपी है। यहाँ है, बाहर खाली अलोक है, जहाँ यह

उस ज्ञान को अपनी बुद्धि में स्थापित करके.. आहाहा! राग में स्थापित करके या ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? आहाहा! आकाश के लिए भी बुद्धि में स्थापित करके कहा था। वहाँ राग में, विकल्प में रखकर विचार कर, ऐसा वहाँ नहीं कहा। आहाहा! अलौकिक बातें हैं।

यह आत्मा अन्दर देह से भिन्न है। यह (देह) तो जड़ मिट्टी है, यह वाणी जड़, मन जड़ है। अन्दर चैतन्य प्रभु, जो ज्ञान की मुख्यता से ज्ञान प्रधान है, उस ज्ञान को अपनी बुद्धि में-पर्याय में स्थापित करके। बुद्धि में अर्थात् ज्ञान की पर्याय में। यह एक ज्ञान जो त्रिकाली वस्तु है, उसका विचार कर। (ज्ञान का) आधारार्थेयभाव का विचार किया जाये.. इस आत्मा का आधार-आर्थेयभाव विचार किया जाए। ज्ञान अर्थात् आत्मा। भाषा तो सादी है परन्तु भाव तो (गम्भीर है)। आहाहा!

जैसे आकाश को बुद्धि में स्थापित करके उसका आधार-आर्थेय (भाव) नहीं है। इसी प्रकार इस ज्ञान को अर्थात् आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, सत्—शाश्वत् चिद्—ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु अन्दर आत्मा है। अरे! कैसे जँचे? इतना शरीर और एक बीड़ी पीवे, वहाँ प्रसन्न हो जाता है। सिगरेट पीवे, (तब) पाखाने में दस्त उतरे, (उसमें) प्रसन्न हो जाए। आहाहा! उसे ऐसा आत्मा (समझना)। बापू! आत्मा तो अलौकिक है! जैसे आकाश क्षेत्र से अव्यापक नहीं, पसरा हुआ है; इसी प्रकार यह महा ज्ञान, अनन्त ज्ञान, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता... आहाहा! ऐसे भाव की अनन्तता है। उस भाव को बुद्धि में लेकर.. आहाहा! आधार-आर्थेय भाव विचार किया जाए। बात तो बहुत अच्छी आयी है। मनसुखभाई! तुम्हारा रविवार (आवे, तब) बात अच्छी आती है। आहाहा!

जैसे ये शुभ-अशुभभाव, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति और काम-क्रोध, ये कमाना, विषय-वासना, ये सब भाव आत्मा की चीज़ से दूसरी चीज़ है, उनकी जाति दूसरी है। यह जाति है, तब वे कुजात है और इसलिए उनके रहने के अंश भिन्न हैं और इसलिए उनकी सत्ता भिन्न है और इसलिए उनका आधार-आर्थेय भिन्न है और इसलिए उनकी स्वरूप विपरीतता, स्वरूप की विपरीतता अनन्त भिन्न है। आहाहा! और इसी से

वह अज्ञान और ज्ञान दोनों भिन्न हैं। अज्ञान (अर्थात्) इन पुण्य-पाप के परिणाम को अज्ञान कहा। आहाहा! समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसा है, ऐसा कोई बहुत सूक्ष्म नहीं है। आहाहा!

अन्दर जाननेवाला है, वह किसे नहीं जाने? उसे जाननेवाले को मर्यादा क्या होगी? अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, उसका यदि विचार किया जावे... आहाहा! ज्ञान को अपनी बुद्धि में स्थापित करके (ज्ञान का) आधाराधेयभाव का विचार किया जाये.. आहाहा! तब ज्ञान को शेष अन्य द्रव्यों में आरोपित करने का निरोध ही होने से.. आहाहा! यह वस्तु है, ज्ञानस्वरूपी प्रभु वह कोई दूसरी चीज़ के आधार से है, ऐसा है ही नहीं। वह चीज़ स्वयं वस्तु है, वह स्वयं अपने आधार से है। अर्थात् पर्याय जिसका स्वरूप जानना है, जिसे जानने की जिस स्वरूप की बुद्धि है, वह स्वरूप ज्ञानस्वरूप है, वह आत्मस्वरूप है। इसलिए ज्ञानस्वरूप जाननक्रिया, वह आधार है और आत्मा, वह आधेय है परन्तु आत्मा आधेय है और किसी दूसरे के आधार से रहता है, राग के आधार से और पुण्य के आधार से रहता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें। सम्प्रदायवालों को तो कठोर लगे ऐसी है। (सम्प्रदाय) बाँधकर बैठे हैं। तीनों काल ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! क्या कहा?

ज्ञान को अपनी बुद्धि में स्थापित करके.. ज्ञान को अपनी बुद्धि में स्थापित करके, हों! किसी की बुद्धि में स्थापित करके तू विचार कर, ऐसा (नहीं कहा)। ज्ञान में ज्ञान को अपनी बुद्धि में स्थापित करके (ज्ञान का) आधाराधेयभाव का विचार किया जाये, तब ज्ञान को शेष अन्य द्रव्यों में आरोपित करने का निरोध ही होने से.. तब आत्मा दूसरे किसी भी तत्त्व के आधार से है, ऐसा है ही नहीं। वह तो स्वयं अपने आधार से ही है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

बुद्धि में भिन्न आधार की अपेक्षा प्रभावित नहीं होती; और उसके प्रभावित नहीं होने से, 'एक ज्ञान ही एक ज्ञान में ही प्रतिष्ठित है'.. अर्थात् क्या कहा? जाननस्वभाव जो है, कायम असली त्रिकाली ज्ञानस्वभाव का विचार करने पर 'एक ज्ञान ही एक ज्ञान में ही प्रतिष्ठित है'.. अर्थात् कि दूसरी कोई चीज़ नहीं। उसका जो ज्ञान का परिणमन

किया, ज्ञान का परिणमन पर्याय में दशा की, उस दशा के आधार से वह ज्ञात हुआ; इसलिए ज्ञानदशा, वह आत्मा का स्वरूप है, ज्ञान का स्वरूप है। ज्ञान के स्वरूप को ज्ञान के ही स्वरूप का आधार है। आहाहा! अब ऐसा धर्म के नाम से... वस्तु ऐसी है, बापू! कठिन है। धर्म तो एक सेकेण्ड हो तो उसे जन्म-मरण मिटते हैं, ऐसी चीज़ है। परन्तु धर्म कहना किसे, यह समझना बहुत कठिन, बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जब आकाश को बुद्धि में स्थापित करके उसका आधार-आधेय कोई दिखायी नहीं देता; इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु त्रिकाली को वर्तमान परिणमन ज्ञान में विचारने पर, वर्तमान ज्ञान के परिणमन में विचारने पर उसे ज्ञान के आधार से ज्ञान है। वह परिणमन जो हुआ, उसके आधार से ज्ञात हुआ, इसलिए आत्मा के आधार से आत्मा है, यह ज्ञान के आधार से आत्मा है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ज्ञान तो इन्द्रियों द्वारा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी इन्द्रियों द्वारा नहीं होता, इन्द्रियाँ जड़ हैं, वह तो मिट्टी, जड़ धूल है। वह जानती है? जानता है तो आत्मा। जिसकी सत्ता में ज्ञात होता है, जिसकी सत्ता में ज्ञात होता है, वह आत्मा है। इसमें ज्ञात होता है इसमें? वह (इन्द्रियाँ) तो जड़ मिट्टी है। जिसके अस्तित्व में, जिसकी मौजूदगी में यह है, यह है, यह है - ऐसा ज्ञात होता है, वह आत्मा है, वह ज्ञानस्वरूप है। ऐसी बातें हैं। दुनिया से बहुत अलग लगे। क्या हो? बापू! मार्ग ही यह है। आहाहा!

जैसे बुद्धि में आकाश को स्थापित करके आकाश का कोई आधार नहीं, (ऐसा भासित होता है)। ऐसी बुद्धि पसरती नहीं, ऐसी बुद्धि होती ही नहीं कि आकाश को कोई दूसरा आधार होगा। इसी प्रकार भगवान आत्मा वर्तमान ज्ञान का परिणमन, ज्ञान की उत्पाद दशा जो है... आहाहा! उस ज्ञान की वर्तमान दशा को उस ज्ञान का विचार कर कि इस आत्मा को आधार किसका है कि आत्मा को जानने की दशा प्रगट की, वही आत्मा है। तो उसका आत्मा को आत्मा का आधार रहा। आहाहा! समझ में आया ?

राग नहीं, पुण्य दया, दान, व्रत, भक्ति नहीं। ज्ञान (को) बुद्धि में स्थापित करके... आहाहा! यह कहीं कम बात है? बुद्धि में ज्ञान आत्मा है, ऐसा स्थापित करके विचार करे

तो उस ज्ञान का जो परिणामन है, ज्ञान का जो जानने का भाव हुआ, उस भाव में आत्मा ज्ञात होगा, इसलिए उस भाव में आत्मा है, वह भाव भी आत्मा ही है। वह भले जानन पर्याय है, परन्तु है वह आत्मा। अतः आत्मा के आधार से आत्मा है; आत्मा दूसरे के आधार से नहीं है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा-पाठ करे, इससे आत्मा ज्ञात होता है, इसका निषेध करते हैं। वह राग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : छोटे गुणस्थान तक राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धिपूर्वक राग है। राग है, अचेतन है।

मुमुक्षु : कहाँ तक आधार है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा को आत्मा का आधार है। राग का आधार है ही नहीं। इसके लिए तो यह बात चलती है। राग का आधार नहीं, परन्तु उसके कारण पहले दे गये न? कि राग और आत्मा दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं। दोनों के लक्षण भिन्न हैं, दोनों का स्वभाव भिन्न है और इसलिए दोनों के प्रदेश भिन्न हैं और इसलिए उनकी सत्ता भिन्न है। इसलिए उनका आधार-आधेय भी भिन्न है और इसलिए उन दोनों के बीच अत्यन्त स्वरूप विपरीतता है; इसलिए उनका आधार-आधेय भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात है। अभी तो यह दया पाले और व्रत करे, भक्ति पूजा करे, वहाँ धर्म हो जाएगा। धूल में भी धर्म नहीं। वह तो सब राग की क्रिया है।

आत्मा तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। जो ज्ञान जानना और आनन्दस्वरूप है, वह अज्ञान और दुःखरूप रागादि के परिणाम से वह ज्ञात होगा? आहाहा! अज्ञान से ज्ञान ज्ञात होगा? दुःख से आनन्द ज्ञात होगा? आहाहा! शशीभाई! इस संवर अधिकार की शुरुआत में है। आहाहा! चैतन्यप्रकाश का पूर, नूर प्रभु, वह चैतन्यप्रकाश का पूर, उससे दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम अत्यन्त भिन्न जाति है। जाति भिन्न, भात भिन्न, क्षेत्र भिन्न। अरे! काल भिन्न। वे एक समय रहते हैं और यहाँ भगवान तो त्रिकाल रहता है। आहाहा! भाव भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? दोनों भाई आये लगते हैं। माणिकचन्दजी आये लगते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

आचार्यों ने तो ऐसी भाषा करके, करुणा करके जगत को सत्य में बैठाया है। प्रभु!

तू सत्य वस्तु है न! और सत्य वस्तु तुझमें प्रभु! ज्ञान और आनन्द है न! उस ज्ञान और आनन्द का विचार कर तो उस विचार और मनन के आधार से वह ज्ञात होता है, इसलिए मनन के परिणाम आधार और वह (स्वयं) आधेय। राग आधार और आधेय तीन काल में नहीं है। आहाहा! ऐसा है। लोगों को न जँचे, इसलिए एकान्त कहते हैं, फिर लोग ऐसा कहते हैं। वह था नहीं। नहीं था इसलिए (एकान्त लगता है)। वस्तु तो यह है, बापू! आहाहा! और वह न्याय से विचार करे तो इसे जँच जाए ऐसा है।

न्याय से विचार करे कि जो विकारी भाव है, शुभ-अशुभभाव, पुण्य-पाप (भाव है) वह दुःखरूप है, आकुलता है। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। वह आकुलता और आनन्दस्वरूप की जाति एक है? और उस आकुलता के आधार से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा है? आहाहा! उसका जानना तो, बुद्धि में आत्मा को स्थापित करके, बुद्धि में राग (स्थापित करके) नहीं। ज्ञान में (स्थापित करके), ज्ञान की पर्याय में-बुद्धि में आत्मा को स्थापित करके विचार करने पर, उस बुद्धि में दूसरा आधार है, ऐसा नहीं पसरता, ऐसा ज्ञात नहीं होता। कितने बोल डाले हैं न इसमें? पहले डाला है। प्रभावित नहीं होता, डाला है न? पहले (आ गया है)। कहाँ आया वह?

मुमुक्षु : दूसरे पैरेग्राफ की चौथी लाईन।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता है उसकी चौथी? हाँ, यह। बराबर है। प्रभावित नहीं होती;.. यह लो। (भिन्न) आधार-आधेय की अपेक्षा प्रभावित (प्रभावित नहीं होती =लागू नहीं होती; लग सकती नहीं; शमन हो जाती है; उद्भूत नहीं होती।) नहीं होती;.. आहाहा!

बुद्धि में आत्मा को लेकर—लक्ष्य में लेकर यदि उसका विचार करे तो तुझे ऐसा लगेगा कि आत्मा जो मैं जानता हूँ, विचार-मनन (करता हूँ), उस स्वरूप में वह ज्ञात हुआ। वह स्वरूप है, वह आत्मा का स्वरूप ही है। इसलिए स्वरूप का आधार वह जाननक्रिया का आधार, आत्मा आधेय, परन्तु जाननक्रिया के अतिरिक्त राग आधार और जाननक्रिया दो होकर आधेय है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? है न? सामने पड़ा है न? आहाहा!

प्रभवित नहीं होती अर्थात् यहाँ कहना है कि ज्ञान में-ज्ञानपर्याय में सूक्ष्मपना करके जब आत्मा जो त्रिकाल है, उसका विचार करे। आहाहा! तो उसकी बुद्धि में इस आत्मा का दूसरा कोई आधार है, यह बात प्रभवित नहीं होती, लागू नहीं (हो सकती) ऐसा लिखा है न? लागू नहीं हो सकती। आत्मा को दूसरा कुछ राग का आधार है, ऐसा लागू नहीं हो सकती। शमन हो जाती है, उद्भवित नहीं होती। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि सत्ता स्वरूप भगवान त्रिकाल को बुद्धि में स्थापित करके विचार करने पर पर का आधारपना है, वह शमन हो जाता है। अर्थात् होता नहीं। उससे ज्ञात हुआ, इसलिए जाननक्रिया जो धर्म की (हुई), सम्यग्दर्शन-ज्ञान की क्रिया (हुई) वह आधार; आत्मा आधेय है। उससे आत्मा ज्ञात हुआ, इसलिए (आत्मा) आधेय। पहले कल बहुत आ गया है।

तब ज्ञान को शेष अन्य द्रव्यों में आरोपित करने का निरोध ही होने से बुद्धि में भिन्न आधार की अपेक्षा प्रभवित नहीं होती;.. लो! जैसे आकाश की बात थी, वैसे इसकी बात है। आहाहा! और उसके प्रभवित नहीं होने से, 'एक ज्ञान ही एक ज्ञान में ही प्रतिष्ठित है'.. अर्थात्? वस्तु है, उसका जहाँ अन्तर्मुख होकर मनन करे, ज्ञान करता है, ज्ञान का परिणमन होता है, वह ज्ञान ही एक ज्ञान में ही; ज्ञान अर्थात् आत्मा; एक ज्ञान, वह भी एक निर्विकल्प ज्ञान, ऐसा। राग, भेद नहीं। आहाहा! क्या आचार्य की टीका!

एक आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु, वह एक ही ज्ञान में प्रतिष्ठित है, वह एक ही ज्ञान में प्रतिष्ठित है। ज्ञान परिणति एक ही उसकी है। उस परिणति में वह ज्ञात होता है, इसलिए वह परिणति में प्रतिष्ठित है, परिणति में उसे आधार है। आहाहा! ये शब्द दूसरे, भाव दूसरा। यह तो वीतराग की कॉलेज है। अलग जाति, बापू! अभी बहुत फेरफार हो गया है। बहुत फेरफार। बाड़ा में सच्ची बात कहे तो उसे मिथ्या सिद्ध करते हैं, मिथ्या बात को सच्ची सिद्ध करते हैं। आहाहा!

यह एक ज्ञान ही.. अर्थात् आत्मा। एक ज्ञान में ही.. एक ज्ञान में ही अर्थात् उसकी जाति में। ज्ञान का परिणमन, ज्ञान की श्रद्धा, ज्ञान में रमणता इत्यादि-इत्यादि एक ज्ञान में ही आधार है। इस आत्मा को, ज्ञान अर्थात् मनन जो परिणमन हुआ, उसमें ही यह आत्मा है, अन्यत्र कहीं आत्मा है नहीं। यह भलीभाँति समझ लिया जाता है.. ऐसा बराबर समझा जा सकता है। और ऐसा समझ लेनेवाले को पर-आधाराधेयत्व

भासित नहीं होता.. आहाहा! यह दया-दान का मन्द राग आया, मन्द था, (इसलिए) यह ज्ञात हुआ, ऐसा वहाँ नहीं रहता। धर्मी जीव को ज्ञानस्वरूप के परिणमन से यह आत्मा है, ऐसा ज्ञात हुआ, उसे इस ज्ञान परिणमन का आधार है, परन्तु राग आधार है (ऐसा) ज्ञात नहीं होता। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय आधार है और निश्चयरत्नत्रय आधेय है, (ऐसा नहीं है)। यहाँ तो आधेय पूरे तत्त्व को कहना है, परन्तु ऐसा भी नहीं, ऐसा। आहाहा!

यह तो समकित आदि मोक्ष का मार्ग जो अन्दर प्रगट किया, जिससे ज्ञात हुआ, वह जिससे ज्ञात हुआ, वह उसका आधार। क्योंकि ज्ञात किससे हुआ? कि ज्ञान से। इस प्रकार ज्ञान को अन्तर में झुकाया, तब ज्ञात हुआ; इसलिए ज्ञान को अर्थात् आत्मा को ज्ञान का आधार अर्थात् उसके स्वरूप का आधार है। आहाहा!

क्रोधादिक ही क्रोधादिक में ही है। देखा? ज्ञान ही ज्ञान में ही है,.. क्रोधादि अर्थात् राग। क्रोध और मान दो द्वेष है। माया और लोभ दो राग है। इसलिए इस लोभ में राग आ जाता है। इसलिए रागादि सब पर है। वह रागादि राग में है। आत्मा ज्ञान की परिणति में से ज्ञात हुआ, (वह) परिणति में है। आहाहा! समझ में आया? अन्दर बुद्धि में पूरा आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु पूर्ण, 'पूर्णम् इदं' पूर्ण स्वरूप है। तत्त्व है, वह कहीं अधूरा होगा? पूर्ण है। वह पूर्ण ज्ञान और आनन्द का पिण्ड है। उसे बुद्धि में-लक्ष्य में लेकर विचार करे कि इसको आधार कौन? इस वस्तु को आधार कौन? आधार वह मनन करने का परिणमन—जाननक्रिया हुई, वह आधार है। उससे ज्ञात हुआ, इसलिए आधार। राग से ज्ञात हुआ नहीं, इसलिए आधार नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म पड़ता है।

ज्ञान ही ज्ञान में ही है,.. रागादि रागादि में ही है। आहाहा! व्यवहार है, वह व्यवहार में ही है और निश्चय है, मनन वह निश्चय परिणमन हुआ, उसमें वह आत्मा है। उसमें आत्मा ज्ञात हुआ है। आहाहा! समझ में आया? यह तो संवर का शुरुआत का अधिकार है। बहुत अलौकिक है। आहाहा!

यहाँ तो कहा कि दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, यह वस्तु आत्मा से भिन्न है और इसके प्रदेश भिन्न है, इसकी सत्ता भिन्न है, इसका आधार भिन्न है। आहाहा! और दोनों के बीच अत्यन्त स्वरूप विपरीतता है। आहाहा! इसलिए ज्ञान, अज्ञान में नहीं है। अर्थात्

रागादि अज्ञान है, उसमें आत्मा नहीं है। इसलिए ऐसी क्रियाकाण्ड से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

इस प्रकार (ज्ञान का और क्रोधादिक..) आत्मा का और राग-द्वेष का— क्रोध, मान, माया, लोभ (तथा कर्म-नोकर्म का).. कर्म जड़-मिट्टी है, वह आत्मा नहीं है और कर्म के आधार से आत्मा नहीं है तथा कर्म आत्मा के आधार से नहीं है। आहाहा! कर्म की पर्याय कर्म के आधार से है। उस कर्म पर्याय के आधार से है, उसकी पर्याय ज्ञात हुई कि यह विकार है, उसके आधार से कर्म है। आत्मा के आधार से कर्म (नहीं है)। यहाँ एक प्रदेश इकट्ठे हैं। जहाँ आत्मा है, वहाँ कर्म है परन्तु कर्म का आधार आत्मा को नहीं तथा आत्मा का आधार कर्म को नहीं। आहाहा! इसी प्रकार यह शरीर है। नोकर्म लिया है न? उसका अर्थ करते हैं। भेदविज्ञान भलीभाँति सिद्ध हुआ। लो! इस प्रकार भावकर्म (अर्थात्) पुण्य-पाप, द्रव्यकर्म जड़ और नोकर्म (अर्थात्) बाहर की चीजें। (उनका) भेदविज्ञान भलीभाँति सिद्ध हुआ। आहाहा!

भावार्थ : उपयोग तो चैतन्य का परिणाम होने से ज्ञानस्वरूप है.. यह व्याख्या की। उपयोग में उपयोग है, ऐसा कहा था न? उपयोग तो चैतन्य का परिणाम होने से ज्ञानस्वरूप है, आत्मस्वरूप है। और क्रोधादि भावकर्म,.. पुण्य और पाप के भाव, भावकर्म विकार है।

ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म.. ज्ञानावरणादि आठ जड़कर्म हैं न! तथा शरीरादि नोकर्म.. शरीर के आधार से आत्मा अभी नहीं है तथा शरीर, आत्मा के आधार से अभी नहीं है। अरे.. अरे..! ऐसी बातें! किस प्रकार की बात होगी यह? यह (शरीर) मिट्टी, धूल है, वह अजीवतत्त्व है, उसके आधार से अन्दर आत्मा नहीं है तथा आत्मा के आधार से यह शरीर रहा है, ऐसा नहीं है। शरीर, शरीर की पर्याय के आधार से शरीर रहा है। आहाहा! इसे कितना बदलना? सोचा हो कुछ, निकले कुछ। अब सब बदल डालना पड़ेगा। आहाहा! श्रद्धा पूरी लाईन बदल डालनी पड़ेगी। आहाहा!

सभी पुद्गलद्रव्य के परिणाम होने से.. कौन? यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, कर्म और शरीर, ये सब पुद्गल के परिणाम होने से पुद्गलद्रव्य हैं। आहाहा! ये

जीवद्रव्य नहीं। पुद्गलद्रव्य के परिणाम होने से जड़ हैं,.. आहाहा! व्रत करूँ और तप, अपवास करूँ और ऐसा जो विकल्प होता है, वह जड़ है। पुद्गल के परिणाम है; जीव के नहीं। आहाहा! अजीव है।

मुमुक्षु : पर करे, ऐसा कहे तो जड़ हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मान्यता उसकी जड़ हो जाये। मुझे धर्म हुआ, अपवास करता हूँ तो मैंने वस्तु छोड़ी, यह मान्यता मिथ्यात्व-जड़ है। आहाहा! ऐसा कठिन है। लौकिक शिक्षा से यह शिक्षा अलग प्रकार है। आहाहा!

उनमें और ज्ञान में.. अर्थात् (क्रोधादि को) और ज्ञान को, आत्मा को अर्थात् ज्ञान को और उन्हें अर्थात् पुण्य-पापादि भाव को प्रदेशभेद होने से अत्यन्त भेद है। जिसमें से जितने क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं, वे प्रदेश भिन्न हैं। जड़ के प्रदेश, जड़ के भाव वे जो प्रदेश हैं, चैतन्य का परन्तु वह प्रदेश भिन्न प्रदेश है। आहाहा! अत्यन्त भेद है।

इसलिए उपयोग में क्रोधादिक, कर्म तथा नोकर्म नहीं हैं.. चैतन्य के परिणमन में और चैतन्य वस्तु में वे राग-द्वेषादि नहीं हैं तथा कर्म और शरीरादि नहीं हैं। आहाहा! और क्रोधादिक में,.. इन रागादि में कर्म में तथा नोकर्म में उपयोग नहीं है। उनमें आत्मा नहीं है। आत्मा में वे नहीं हैं और उनमें आत्मा नहीं है। आहाहा! जाननस्वभाव से जो आत्मा जानने में आया, उसमें राग नहीं है, क्रोध नहीं है, कर्म नहीं है, शरीर नहीं है और शरीर तथा राग, वे पुद्गल के परिणाम हैं, उनमें आत्मा का परिणमन ज्ञान या आत्मा उनमें है ही नहीं। आत्मा का परिणमन उनमें नहीं है। आत्मा का परिणमन तो शुद्ध है। आहाहा! शुद्ध परिणमन के आधार से आत्मा ज्ञात हुआ, इसलिए शुद्ध परिणमन आधार है, ऐसा यहाँ लेना है। आहाहा!

इस प्रकार उनमें पारमार्थिक आधाराधेय सम्बन्ध नहीं है;.. आत्मा को और राग को, कर्म को और शरीर को आधार-आधेय नहीं है। प्रत्येक वस्तु का अपना-अपना आधाराधेयत्व अपने-अपने में ही है। आहाहा! इस सिर के ऊपर यह परमाणु है न, ऊपर का परमाणु, वह निचले परमाणु के आधार से नहीं है। उसके आधार से वह है। इस पुस्तक के आधार से यह नहीं है। इसमें आधार नाम का गुण है, उसके आधार से यह है। ऐसा दुनिया से (उल्टा है)।

मुमुक्षु : ठवणी के आधार से पुस्तक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके आधार से पुस्तक नहीं है। आहाहा! व्यवहार के आधार से निश्चय नहीं है और निश्चय के आधार से व्यवहार नहीं है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। अरे! अपना विचार करके मैं कौन हूँ? यह क्या है? निर्णय करने का अवसर कम। जगत के पाप के धन्धे पूरे दिन। आहाहा! अरे! यह तो क्या चीज़ है? और यह क्या कहते हैं? आहाहा! पहली तीन गाथाओं में तो गजब काम किया है! तीन हैं न? ओहोहो!

उपयोग में क्रोधादिक, कर्म तथा नोकर्म नहीं हैं.. उपयोग अर्थात् आत्मा। और क्रोधादिक में, कर्म में तथा नोकर्म में उपयोग (आत्मा) नहीं है। इस प्रकार उनमें पारमार्थिक आधाराधेय सम्बन्ध नहीं है; प्रत्येक वस्तु का अपना अपना आधाराधेयत्व अपने अपने में ही है। इसलिए उपयोग.. अर्थात् आत्मा। उपयोग में ही है.. आत्मा आत्मा में ही है। यह आत्मा का परिणमन हुआ, वह उपयोग, वह आत्मा। उसके आधार से आत्मा है। राग का परिणमन हुआ, वह जड़ के आधार से है, वह जड़ है। आहाहा! अन्दर भिन्न पड़कर ज्ञान का परिणमन हुआ, उसमें आत्मा है, क्योंकि उस परिणमन में आत्मा ज्ञात हुआ है। आहाहा! राग परिणमन में जड़ ज्ञात हुआ है, अज्ञान ज्ञात हुआ है। आहाहा!

उपयोग, उपयोग में ही है.. मूल पाठ था, उसका लिया है। क्रोध, क्रोध में ही है। इस प्रकार भेदविज्ञान भलीभाँति सिद्ध हो गया। लो, भिन्नता भलीभाँति सिद्ध हुई। जैसा भिन्न है, वैसा भिन्न भलीभाँति सिद्ध हुआ। आहाहा! (भावकर्म इत्यादि का और उपयोग का भेद जानना, सो भेदविज्ञान है।) भावकर्म, हों! (भावकर्म इत्यादि का और उपयोग का भेद जानना, सो भेदविज्ञान है।) अन्तिम।

कलश-१२६

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(शार्दूलविक्रीडित)

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो-
रन्तर्दारुण-दारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च ।
भेदज्ञान-मुदेति निर्मल-मिदं मोदध्व-मध्यासिताः
शुद्ध-ज्ञान-घनौघ-मेक-मधुना सन्तो द्वितीयच्युताः ॥१२६॥

एवमिदं भेदविज्ञानं यदा ज्ञानस्य वैपरीत्यकणिकामप्यनासादयदविचलितमवतिष्ठते तदा शुद्धोप-योगमयात्मत्वेन ज्ञानं ज्ञानमेव केवलं सन्न किञ्चनापि रागद्वेषमोहरूपं भावमारचयति ।

ततो भेदविज्ञानाच्छुद्धात्मोपलम्भः प्रभवति । शुद्धात्मोपलम्भात् रागद्वेषमोहाभावलक्षणः सम्वरः प्रभवति ॥१८१-१८३॥

श्लोकार्थः : [चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः ज्ञानस्य रागस्य च] चिद्रूपता को धारण करनेवाला ज्ञान और जडरूपता को धारण करनेवाला राग-[द्वयोः] दोनों का [अंतः] अन्तरंग में [दारुणदारणेन] दारुण विदारण के द्वारा (भेद करनेवाले उग्र अभ्यास के द्वारा), [परितः विभागं कृत्वा] सभी ओर से विभाग करके (-सम्पूर्णतया दोनों को अलग करके-) [इदं निर्मलम् भेदज्ञानम् उदेति] यह निर्मल भेदज्ञान उदय को प्राप्त हुआ है; [अधुना] इसलिए अब [एकम् शुद्ध-ज्ञानघन-ओघम् अध्यासिताः] एक शुद्धविज्ञानधन के पुञ्ज में स्थित और [द्वितीय-च्युताः] अन्य से अर्थात् राग से रहित; [सन्तः] हे सत्पुरुषो! [मोदध्वम्] मुदित होओ।

भावार्थः : ज्ञान तो चेतनास्वरूप है और रागादिक पुद्गलविकार होने से जड़ हैं; किन्तु ऐसा भासित होता है कि मानों अज्ञान से ज्ञान भी रागादिरूप हो गया हो, अर्थात् ज्ञान और रागादिक दोनों एकरूप-जडरूप-भासित होते हैं। जब अन्तरंग में ज्ञान और रागादि का भेद करने का तीव्र अभ्यास करने से भेदज्ञान प्रगट होता है, तब यह ज्ञात होता है कि ज्ञान का स्वभाव तो मात्र जानने का ही है, ज्ञान में जो रागादि की कलुषता-आकुलतारूप सकल्पविकल्प भासित होते हैं, वे सब पुद्गलविकार हैं; जड़ हैं। इस

प्रकार ज्ञान और रागादि के भेद का स्वाद आता है अर्थात् अनुभव होता है। जब ऐसा भेदज्ञान होता है, तब आत्मा आनन्दित होता है क्योंकि उसे ज्ञात है कि “स्वयं सदा ज्ञानस्वरूप ही रहा है, रागादिरूप कभी नहीं हुआ” इसलिए आचार्यदेव ने कहा है कि ‘हे सत्पुरुषो! अब मुदित होओ’ ॥१२६॥

टीका : इस प्रकार जब यह भेदविज्ञान ज्ञान को अणुमात्र भी (रागादि-विकाररूप) विपरीतता को न प्राप्त कराता हुआ अविचलरूप से रहता है, तब शुद्ध-उपयोगमयात्मकता के द्वारा ज्ञान केवल ज्ञानरूप ही रहता हुआ किञ्चित्मात्र भी रागद्वेषमोहरूप भाव को नहीं करता; इसलिए (यह सिद्ध हुआ कि) भेदविज्ञान से शुद्ध आत्मा की उपलब्धि (अनुभव) होती है और शुद्ध आत्मा की उपलब्धि से रागद्वेषमोह का (आस्रवभाव का) अभाव जिसका लक्षण है, ऐसा संवर होता है।

श्लोक - १२६ पर प्रवचन

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:- लो १२६ (कलश)

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो-

रन्तर्दारुण-दारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।

भेदज्ञान-मुदेति निर्मल-मिदं मोदध्व-मध्यासिताः

शुद्ध-ज्ञान-घनौघ-मेक-मधुना सन्तो द्वितीयच्युताः ॥१२६॥

आहाहा! अर्थ चिद्रूपता को धारण करनेवाला ज्ञान.. भगवान आत्मा तो जाननस्वभाव का धारक है। है? जडरूपता को धारण करनेवाला राग.. राग शब्द से राग-द्वेष, पुण्य-पाप सब (ले लेना)। आहाहा! टीका का वापिस संक्षिप्त कलश किया है। टीका का ही भाव है। चिद्रूपता को धारण करनेवाला ज्ञान और जडरूपता को धारण करनेवाला राग-दोनों का अन्तरंग में दारुण विदारण के द्वारा.. आहाहा! अन्दर (भेद करनेवाले उग्र अभ्यास के द्वारा),.. आहाहा! अन्तर में यह राग, विकल्प है, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध और भगवान ज्ञानस्वरूप है, उन दोनों को उग्र भेद करके। आहाहा! यह भेदज्ञान, इसका नाम धर्म। ऐसी बात है।

भेद, आहाहा! [दारुणदारणेन] दारुण विदारण के द्वारा (भेद करनेवाले उग्र अभ्यास के द्वारा),.. देखा? आहाहा! क्योंकि अन्दर जो रागादि हैं, उनकी दिशा परसन्मुख जाती है और ज्ञानस्वरूप का परिणमन, वह स्वसन्मुख जाता है। आहाहा! समझ में आया? राग होता है, उसका लक्ष्य बाहर जाता है और ज्ञान का परिणमन है, वह चैतन्यद्रव्य है। लक्ष्य वहाँ जाता है। आहाहा! [दारुणदारणेन] (उग्र अभ्यास के द्वारा),.. [परितः विभागं कृत्वा] सभी ओर से विभाग करके.. आहाहा! (-सम्पूर्णतया दोनों को अलग करके).. कहीं भी राग अंश आत्मा में रहे नहीं, (इस प्रकार से)। आहाहा! चारों ओर से भिन्न करके। आहाहा!

(-सम्पूर्णतया दोनों को अलग करके-) [इदं निर्मलम् भेदज्ञानम् उदेति] यह निर्मल भेदज्ञान उदय को प्राप्त हुआ है;.. आहाहा! अनन्त काल में किया नहीं था, वह यह किया, कहते हैं। इसका नाम धर्म कहा जाता है, बाकी सब बातें व्यर्थ है। आहाहा! राग से भिन्न पड़ा हुआ जो आत्मा, उग्र अभ्यास से विभाग करके चारों ओर से विभाग करके। कोई भी राग का अंश या शरीर का अंश आत्मा में नहीं आता। आहाहा! आत्मा का ज्ञानांश है, वह कहीं राग में और शरीर में नहीं जाता। चारों ओर से विभाग करके (-सम्पूर्णतया दोनों को अलग करके-) [इदं निर्मलम् भेदज्ञानम् उदेति] यह निर्मल भेदज्ञान उदय.. होता है। यह सम्यग्ज्ञान, इसका नाम सम्यग्ज्ञान, इसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा!

सम्यक् अर्थात् जैसा है, वैसा दर्शन। सम्यक् अर्थात् सत्य का दर्शन। सत्य—जैसा आत्मा है। राग से भिन्न पड़कर, भेद करके जैसा है, वैसा अन्दर अनुभव किया, वह सत् है, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आत्मा के सत्य को सत्यरूप से जानकर, अनुभव करके स्वीकार किया। आहाहा!

इसलिए अब एक शुद्धविज्ञानधन के पुञ्ज में स्थित.. आहाहा! देखा? और अन्य से अर्थात् राग से रहित; हे सत्पुरुषो! [मोदध्वम्].. आनन्द में आ जा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग के विकल्प से, वृत्ति से आत्मा को पृथक् करने पर, आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द आवे, तब उसे भेदज्ञान और समकित हुआ—ऐसा कहने में आता है।

तब उसे धर्म की शुरुआत हुई। आहाहा! ऐसा मार्ग। [मोदध्वम्] है न? आनन्द, आनन्द को प्राप्त कर?

हे सत्पुरुषो! तुम्हें मुदित होओ। अन्दर आनन्द में आ जाओ। आहाहा! (रागादि से) भेद करके। जैसे तू दुःख में था, राग अर्थात् दुःख, (उससे) भेद करने पर आत्मा का आनन्द आवे, मुदित होओ, प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, प्रसन्नता इसमें आओ।

विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)